जैन साहित्यमें संख्या तथा संकलनादिसूचक संकेत

डॉ० मुकुटबिहारी लाल अग्रवाल, आगरा, (उ० प्र०)

आज विज्ञानका युग है। आजका जिज्ञासु प्रतिपल नवीन खोज एवं उपलब्धियोंको ज्ञात करनेमें विकल है। यदि मानव एक अनन्त आकाशकी नीलिमा, नक्षत्र तथा चन्द्रलोकका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करनेमें व्यस्त है, तो दूसरी ओर वह प्राचीन साहित्य तथा भूगर्भमें छिपे हुए अनन्त रहस्योंको जाननेमें भी संलग्न है।

जैन साहित्य ज्ञानराशिका विपुल भण्डार है। यह विशाल साहित्य यत्र तत्र विखरा हुआ है। इस साहित्यमें प्रत्येक विषयपर असीम ज्ञानराशि उपलब्ध है। गणितमें भी जैन विद्वान किसीसे पीछे नहीं रहे। उन्होंने इस क्षेत्रमें भी आगे बढ़कर अपनी सूझ-बूझ तथा क्षमताका परिचय दिया है। उनके इस क्षेत्रमें सराहनीय कार्यका अवलोकन करके जहाँ एक ओर उनकी अलौकिक प्रतिभा, ज्ञान तथा बुद्धिमत्ताका परिचय मिलता है, वहीं दूसरी ओर आजके गणितके क्षेत्रसे कुछ अलग-थलग तथा आश्चर्यमें डालनेवाली बातें भी मिलती हैं। लेकिन ये बातें भी ठोस ज्ञान, तर्क तथा बुद्धिमत्ताके धरातल पर आधारित हैं।

प्रस्तुत निबन्ध जैन साहित्यमें संख्या तथा संकलनादिसूचक संकेतमें इस बातकी जानकारी देनेका प्रयत्न किया गया है कि जैन साहित्यमें संख्या एवं उसके सूचक संकेतोंका क्या रूप था। जैन साहित्य में इस बातका अध्ययन करनेके साथ ही विषयकी गरिमाको बढ़ानेके लिए तथा जिज्ञासु पाठकोंको नवीन दिशाके बोध हेतु जैनेतर साहित्यके साथ तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। आज एकको संख्या में सम्मिलित किया जाता है, परन्तु जैन साहित्यके अध्ययनके पश्चात् यह तथ्य दृष्टिमें आता है कि जैन मनीषियोंने एकको संख्याकी कोटिमें नहीं रक्खा है। आज हम देखते हैं कि जहाँ बड़ी-से-बड़ी संख्या केवल अठारह-उन्नीस अंकोंकी होती है, वहीं जैन साहित्यमें दो सौ पचास अंकों तककी संख्या उपलब्ध है जो जैन विद्वानोंकी प्रतिभा तथा अनन्त ज्ञानकी द्योतक है। निबन्धमें इस तथ्यको भी व्यक्त करनेका प्रयास किया गया है कि जैन साहित्यमें संख्या एवं अंकोंकी बनावट किस प्रकार थी जिससे आजका विज्ञ पाठक उस रूपका अध्ययन करनेके पश्चात् इस बातसे परिचित हो सके कि उस समय भी जैन विद्वान गणितके क्षेत्रमें कितने आगे पग बढ़ाकर विश्वको ज्ञानका आलोक विकीर्ण कर रहे थे। गणित संकेतोंका आज बड़ा महत्त्व है क्योंकि इनके ही माध्यमसे गणितके क्षेत्रमें आगे पग बढ़ाया जाता है।

संख्याकी परिभाषा

व्याकरणशास्त्रके अनुसार संख्या शब्द सं + ख्या + अङ् + टाप्से बना है। व्युत्पत्तिके अनुसार संख्यातेऽनया इति संख्या अर्थात् जिसके द्वारा गणना की जाती है वह संख्या है। शब्दकल्पद्रुमके अनुसार गणनाके व्यवहारमें जो हेतु है, उसे संख्या कहते हैं। न्यायकोशमें भी इसी प्रकारका कथन है। उसमें लिखा है कि शब्दशास्त्री नियत विषयके परिच्छेदके हेतुको संख्या कहते हैं। कोशकारोंके अतिरिक्त कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणितज्ञोंने भी संख्याकी परिभाषा की है। लीलावतीके लेखक सुप्रसिद्ध भास्कराचार्यने संख्याको गणनाका आधार कहा है। न्यायशास्त्रियोंने भी संख्याको एक गुण विशेषके रूपमें लिखा है तथा उसकी गणना चौबीस गुणोंके अन्तर्गत की है। प्रशस्तपादभाष्यके अनुसार संख्या एकत्व आदि व्यवहारका कारण स्वरूप एक विशिष्ट गुण है। तर्कसंग्रहकारने भी व्यक्त किया है।

जैनाचार्योंने भी संख्याकी परिभाषा की है। उनके मतानुसार संख्या वही है जिसके द्वारा वस्तुओंके परिमाणका ज्ञान हो। अभिधानराजेन्द्रमें संख्याकी परिभाषा इस प्रकार है : जिसके द्वारा जीवादि पदार्थों का संख्यात्मक ज्ञान होता है, वह संख्या है।[1] आचार्य अकलंकदेवने भी इसी प्रकार लिखा है—जिसका सद्भाव प्रसिद्ध है, उसी पदार्थकी गणना संख्यात, असंख्यात तथा अनन्तके रूपसे की जाती है। अतः सत्के बाद परिमाण निश्चित करनेवाली संख्याको ग्रहण किया गया है।[2]

एककी गिनती संख्या नहीं है

जैन साहित्यमें एककी गिनतीको संख्या नहीं मानते। इस विषयमें अनुयोगद्वारसूत्रके १४६वें सूत्रमें निम्न कथनोपकथन दृष्टिगोचर होता है :

प्रश्न—गणना संख्या क्या है ?

उत्तर—एक गणना संख्या नहीं है। गणना संख्या दोसे प्रारम्भ होती है।[3] ऐसा क्यों है, इसका उत्तर अभिधानराजेन्द्रमें इस प्रकार दिया गया है : एककी गिनती संख्या नहीं है क्योंकि एक घटको देखकर यहाँ घट है, इसकी प्रतीति होती है। उसकी संख्याका ज्ञान नहीं होता। अथवा दानसमर्पणादि व्यवहार कालमें लोग एक चीजकी गिनती नहीं करते। कारण चाहे सम्यक् व्यवहारका प्रभाव हो अथवा इस प्रकार गिननेसे अल्पत्वका बोध हो, पर एकको संख्या नहीं मानते। अतएव संख्याका आरम्भ दोसे होता है।[4]

धवलाकार वीरसेन एवं आचार्य नेमिचन्द्र चक्रवर्तीके निम्न वचन हैं :

गणना अर्थात् गिनती एकसे प्रारम्भ होती है पर संख्याका आरम्भ दोसे होता है। तीन और उससे बड़ी संख्याको कृति कहा गया है। त्रिलोकसारके टीकाकार माधवचन्द्र त्रैविद्यका भी यही मत है। इनका कथन है कि जिस संख्याके वर्गमेंसे मूल घटाकर शेषको वर्ग करनेपर यदि पहले वर्गसे बड़ी संख्या प्राप्त हो, उसे कृति कहते हैं। एक और दोमें कृतिका यह लक्षण घटित न होनेसे एक और दो कृति नहीं है। तीन आदि संख्याओंमें उक्त लक्षण घटित होनेके कारणसे संख्यायें कृति कहलाती हैं। कृतिकी उपरोक्त परिभाषा जैनगणितकी विशेषता है। यह जैनेत्तर ग्रन्थोंमें नहीं मिलती।

जैन साहित्यमें विशाल संख्याएँ

स्थानांगसूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, अनुयोगद्वारसूत्र, जीवसमास आदिमें कालमानके सन्दर्भमें निम्नलिखित इकाइयोंका कथन किया गया है।

पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, उपट्टांग, अट्ट, अवयांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अक्षिनिकुरांग, अक्षिनिकुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीषप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहेलिका।

---

१. राजेन्द्रअभिधान, भाग १, पृ० ६३।

२. तत्त्वार्थवार्तिक, सम्पादक प्रो० महेन्द्रकुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९५३–१–८, ३।

३. "से किं गणणासंखा ? एक्को गणणं न उबेइ, दुप्पमिह संख्या" अनुयोगद्वारसूत्र, सूत्र १४६।

४. राजेन्द्रअभिधान, भाग ७, पृ० ६७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक पूर्वांगका मान ८४ लाख वर्ष है तथा अन्य इकाई अपने पूर्ववालीसे ८४ लाख गुनी बड़ी है। सबसे बड़ी इकाई शीर्ष प्रहेलिका है जिसका मान (८४०००००) २८ वर्ष है। यह ध्यान देने योग्य है कि (८४०००००) २८ को विस्तार करने पर १९४ अंककी संख्या प्राप्त होती है।

ज्योतिषकरण्डकमें भी ऐसी एक सूची मिलती है परन्तु वह उपर्युक्त सूचीसे भिन्न है। यह सूची निम्न प्रकार है।[1]

पूर्व, लतांग, लता, महालतांग, महालता, नलिनांग, नलिन, महानलिनांग, महानलिन, पद्मांग, पद्म, महापद्मांग, महापद्म, कमलांग, कमल, महाकमलांग, महाकमल, कुदुमांग, कुदुम, महाकुदुमांग, महाकुमुद, त्रुटितांग, त्रुटित, महात्रुटितांग, महात्रुटित, अददांग, अद्द, महाददांग, महादद, हूहूांग, हूहू, महाहूहांग, महाहूहू, शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहेलिका। इसमें भी प्रत्येक इकाई अपनी पिछली इकाईसे ८४०००० गुनी बड़ी है। यहाँ पर शीर्षप्रहेलिका मान (८४०००००) ३६ वर्ष है। इसका विस्तार करने पर २५० अंकोंकी संख्या प्राप्त होती है।

अंकोंकी लिखावट—ईस से चौथी शताब्दी पूर्व और पहलेके जैन आगमोंमें अठारह लिपियोंकी सूची दी हुई है[2]। इन लिपियोंमें अंकलिपि और गणितलिपि भी सम्मिलित है। डा० विभूतिभूषण दत्तका विचार है कि ये लिपियाँ इस बातकी सूचना देती हैं कि विभिन्न कार्योंके लिये अंकोंकी लिखावट विभिन्न प्रकारकी होती थी। उनका विचार है कि अंकलिपि स्तंभों पर खुदाईमें तथा गणितलिपि गणितीय क्रियाओंमें प्रयोगकी जाती थी।

पं० हीराचन्द्र गौरीशंकर ओझाने लिखा है कि जैन हस्तलिपियोंमें ब्राह्मीके अंकोंका प्रयोग हुआ है।

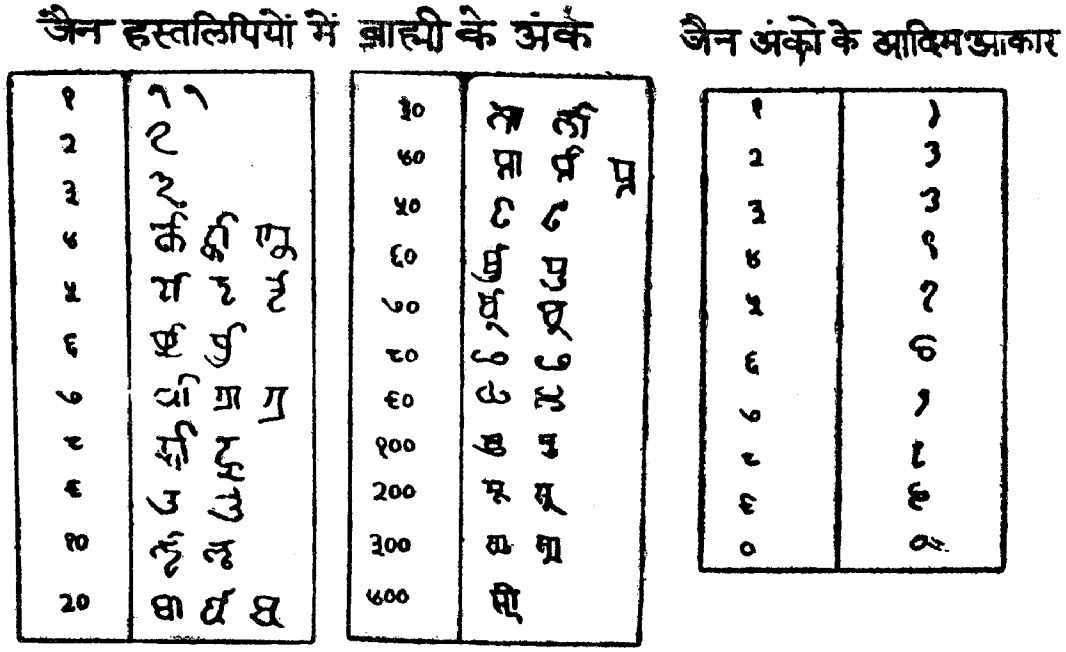

१. ज्योतिषकरण्डक, (६४–७१)।

२. समवायांगसूत्र (लगभग ३०० ई० पू०), सूत्र १८, श्यामाचार्य द्वारा रचित; प्रज्ञापनासूत्र, सूत्र १८; आवश्यकनिर्युक्ति, मलमाधारिन हेमचन्द्रकी विशेषावश्यकभाष्यकी टीका (४६४)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस सम्बन्धमें उन्होंने वामभागमें प्रदर्शित सारणी भी दी है। इन्होंने जैन अंकोंके आदिम आकारोंकी भी सूची दी है जो दक्षिण भागमें प्रदर्शित की गई है। विभिन्न हस्तलिखित जैन ग्रन्थोंके आधार पर कापडियाने एक विस्तृत तालिका संकलित की है। इससे भी जैन साहित्यमें प्रचलित अंकोंकी बनावटके सम्बन्धमें विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। इन हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूची निम्न है :

१. निशीथसूत्र, विशेषचूर्ण्यादि (११९४)
२. विशेषावश्यकभाष्यवृत्ति (शिष्यहिता)
३. पन्यवस्तुक
४. विशेषावश्यकभाष्यवृत्ति
५. बृहत्कल्पसूत्रचूर्णि
६. ऋषिदन्ताचरित्र
७. निशीथसूत्र (विशेषचूर्ण्यादि (१२९४)
८. पिण्डविशुद्धि
९. उत्तराध्ययनसूत्र
१०. बृहत्कल्पसूत्र
११. बृहत्कल्पसूत्रलघुभाष्य
१२. बृहत्कल्पसूत्रचूर्णि
१३. उत्तराध्ययनसूत्र (१३४२)
१४. उत्तराध्ययन सूत्रवृत्ति
१५. चैत्यवन्दनसूत्रवृत्ति (ललितविस्तर)
१६. ललितविस्तरपञ्जिका
१७. मलयगिरीय शब्दानुशासन
१८. सप्ततिका
१९. व्यवहारसूत्रभाष्यटीका
२०. व्यवहारसूत्रादि
२१. आचारांगसूत्रचूर्णि
२२. कपसूत्रादि।

संकलनादि सूचक संकेत

गणितके आधुनिक चिह्न धन (+) तथा ऋण (−) सबसे पहले१४८९ में मुद्रित हुए थे। गुणन (×) और भाग (÷) के चिह्न क्रमशः १६३१ और १६५९ में प्रकाशित हुये थे। समता (=) का चिह्न राबर्ट रिकार्डेने सन् १५५७ में प्रचलित किया था।

१४६० के लगभग बोहीमियाके एक नगरमें जॉन विड्मैन नामक एक गणितज्ञ हुआ है। सबसे पहले इसीने मुद्रित पुस्तकमें + और − चिह्नोंका प्रयोग किया है। अपनी पुस्तकमें इसने इन चिह्नोंको जोड़ने और घटानेके अर्थमें प्रयोग नहीं किया था। वह तो ये चिह्न व्यापारिक बण्डलोंपर यह दिखानेके लिये डाला करता था कि अमुक बण्डल किसी निश्चित मात्रासे अधिक है या कम।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थोंका अवलोकन करनेसे ज्ञात होता है कि भारतवर्षमें भी संकलन आदि परिकर्मोंको सूचित करनेके लिये संकेतोंका प्रयोग किया जाता था। ये संकेत या तो प्रतीकात्मक हैं या चिह्नात्मक। भारतीय ग्रन्थोंमें प्रयुक्त संकेतोंके विषयमें यहाँ संक्षेपण किया जा रहा है।

जोड़नेके लिये संकेत

वक्षाली हस्तलिपि २१ में जोड़नेके लिये 'युत' का प्रथम अक्षर 'यु' मिलता है। यह अक्षर 'यु' जोड़ी जानेवाली संख्याके अन्तमें लिखा जाता था। यथा जब ४ और ९ जोड़ने होते थे, तब उसे इसप्रकार लिखा जाता था :

४	९
१	१ यु

भारतीय प्राचीन ग्रन्थोंमें पूर्णांक लिखनेकी यह पद्धति थी कि अंकके नीचे १ लिख दिया जाता था किन्तु दोनोंके बीचमें भाग रेखा नहीं लगाई जाती थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनग्रन्थ तिलोयपण्णत्तिमें भी शुरूसे आखीर तक जोड़ने के लिये 'छण' शब्द लिखा है क्योंकि प्राचीन साहित्यमें धनके लिये 'घण' शब्द प्रयोग होता था। इसके विपर्यासमें, पं० टोडरमलने अर्थसंदृष्टि नामक ग्रन्थमें जोड़नेके लिये (–) चिह्नका प्रयोग किया है, यथा $\log_2 \log_2 (अ) + १$ के लिये इस ग्रन्थमें इसप्रकार लिखा है :

$$१ -$$
$$ब_२$$

जोड़नेके लिये, विशेषकर भिन्नोंके प्रयोगमें तिलोयपण्णत्ति और अर्थसंदृष्टिमें खड़ी लकीरका प्रयोग मिलता है[1], यथा

१। $\frac{१}{२}$ का आशय $१ + \frac{१}{२}$ से है।

घटानेके लिये संकेत

वक्षाली हस्तलिपिके देखनेसे पता चलता है कि उसमें घटानेके लिये + चिह्नका प्रयोग किया जाता था। यह + चिह्न उस अंकके बाद लगाया जाता था जिसे घटाना होता था। यथा, २० में ३ घटानेके लिये इसप्रकार लिखा जाता था :

२० ३ +
। ।

कुछ जैन ग्रन्थोंमें भी घटानेके उपरोक्त संकेतका प्रयोग मिला है परन्तु यह + चिह्न घटायी जाने वाली संख्याके ऊपर लिखा जाता था। आचार्य वीरसेनने धवलामें इसप्रकारके संकेतका प्रयोग किया है[2]। तिलोयपण्णत्ति और त्रिलोकसार और अर्थसंदृष्टिमें घटानेके लिये ⊼ चिह्न भी मिलता है। जैसे २०० मेंसे २ घटानेके लिये इसप्रकार लिखते है :

२⊼
२००

त्रिलोकसार और अर्थसंदृष्टिमें घटानेके लिये ० का संकेत भी मिलता है। यथा, यदि २०० मेंसे ३ घटाने हो, तो इसप्रकार लिखते थे :

२००
०
३

टोडरमलने घटानेके लिये U और ⊃ संकेतोंका प्रयोग भी अर्थसंदृष्टिमें किया है। यथा, यदि एक लाखमेंसे ५ घटाना हो, तो इसप्रकार लिखते थे :

लU५ तथा ल⊃
५

गुणाके लिये संकेत

गुणाके लिये वक्षाली हस्तलिपिने 'गु' संकेतका प्रयोग मिलता है। यह संकेत 'गु' शब्द गुणा अथवा 'गुणित' का प्रथम अक्षर है। यथा :

---

१. तिलोयपण्णत्ति, भाग २, पृ० ७७१ तथा अर्थसंदृष्टि, पृ० ११।
२. धवला, पुस्तक १०, १९५४, पृ० १५१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३	३	३	३	३	३	३	१०	गु०
।	।	।	।	।	।	।	।	

इसका आशय ३×३×३×३×३×३×३×३×१० से है।

तिलोयपण्णत्तिमें गुणाके लिये एक खड़ी लकीरका प्रयोग किया गया है। यथा, इसमें १०००×९६×५००×८×८×८×८×८×८×८×८×८ के लिये इसप्रकार लिखा है[1] :

५०।९६।५••।८।८।८।८।८।८।८।८।८

यहाँपर ५० का आशय १००० है। अर्थ संदृष्टिमें भी गुणाके लिये यही चिह्न मिलता है। यथा यहाँ १६ को २ से गुणा करनेके लिये १६।२ लिखा है[2]। त्रिलोकसारमें भी गुणाके लिये यही संकेत मिलता है, यथा १२८ को ६४ से गुणा करनेके लिये १२८।६४ लिखा है[3]।

भागके लिये संकेत

भागके लिये वक्षाली गणितमें 'भा' संकेतका प्रयोग मिलता है। यह संकेत 'भा' शब्द 'भाग' अथवा 'भाजित' का प्रथम अक्षर है। यथा,

४० भा	१६०	१३
१	१	१
		२

इसका आशय $\frac{१६०}{४०} \times १३ - \frac{१}{२}$ से है।

भिन्नोंको प्रदर्शित करनेके लिये प्राचीन जैन साहित्यमें अंश और हरके बीच रेखाका प्रयोग नहीं मिलता है। तिलोयपण्णत्तिमें बेलनका आयतन मालूम किया है जो $\frac{१९}{२४}$ को इस ग्रन्थमें इसप्रकार लिखा है[4] :

१	९
२	४

त्रिलोकसारमें भी इसीप्रकारके उदाहरण मिलते है। इसमें लिखा है कि इक्यासीसौ वाणवेंके चौसठवाँ भागको इसप्रकार लिखियें[5] :

८ १	९ २
	६ ४

इसमें भाग देकर शेष बचनेपर उसको लिखनेकी विधिका भी उल्लेख किया है जो आधुनिक विधिसे

१. तिलोयपण्णत्ति, भाग १, गाथा १, १२३, १२४।
२. अर्थसंदृष्टि, पृ० ६।
३. त्रिलोकसार, परि०, पृ० ३।
४. तिलोयपण्णत्ति भाग १, गाथा १, ११८।
५. त्रिलोकसार, परि०, पृ० ५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिन्न है। यथा, ८१९४ में ६४ का भाग दें, तो १२८ बार भाग जावेगा और २ शेषर हेगें अर्थात् $१२८\frac{२}{६४}$ को इस ग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है[1] :

१२८। २
६४

शून्यका प्रयोग

० का प्रयोग आदि संख्याके रूपमें प्रारम्भ नहीं हुआ, अपितु रिक्त स्थानकी पूर्ति हेतु प्रतीकके रूपमें हुआ था। आधुनिक संकेत लिपिकमें जहाँ ० लिखा जाता है, वहाँ पर प्राचीनकालमें ० संकेत न लिख कर उस स्थानको रिक्त छोड़ दिया जाता था। यथा ४६ का अर्थ होता है छियालिस और ४ ६ का अर्थ होता था चार सौछह। यदि दोनों अंकोंके मध्य जितना स्थान छोड़ना चाहिये, उससे यदि कम छोड़ा जाता था, तो पाठकगण भ्रममें पड़ जाते थे लेखकका आशय ४६ से है अथवा ४०६ से। इस भ्रमके निवारणार्थ इस संख्याको ४ ६ न लिखकर ४.६ के रूपमें अंकित किया जाने लगा। धीरे-धीरे इस प्रणाली का आधुनिक रूप ४०६ हो गया।

इस प्रकारके प्रयोगका उल्लेख प्राचीन जैन ग्रन्थों एवं मन्दिरों आदिमें भी लिखा मिलता है। उदाहरणार्थ आगराके हींगकी मण्डीमें गोपीनाथ जी के मन्दिरमें एक जैन प्रतिमा है जिसका निर्माण काल सं० १५० ई० है, परन्तु इस प्रतिमा पर इसका निर्माण काल १५०९ न लिखकर १५ ९ लिखा है।

वर्गके लिए चिह्न

किसी संख्याके वर्गके लिए 'व' चिह्न मिलता है परन्तु यह चिह्न 'व' उस संख्याके बादमें लिखा जाता है जिसका वर्ग करना होता है। यथा—'ज जु' 'अ' एक संख्या है जिसका अर्थ जघन्ययुक्त अनन्त है। यदि इसका वर्ग करेंगे, तो इस प्रकार लिखेंगे[2] :

ज जु अ व

यह संकेत 'व' वर्ग शब्दका प्रथम अक्षर है। इसी प्रकार घनका संकेत 'ध' और चतुर्थ घातके लिए 'व-व' (वर्ग वर्ग), पाँचवीं घातके लिये व - घ - घा' (वर्ग - घन घात), छठवीं घातके लिये ध - व (घनवर्ग), सातवीं घातके लिये व - व - घ - घा (वर्ग - वर्ग घन घात) और इसी तरह आगेके लिये भी संकेत दिये हुये हैं।

वर्गित संवर्गितके लिये चिह्न

वर्गित संवर्गित शब्दका तात्पर्य किसी संख्याका उसी संख्याके तुल्य घात करनेसे है। जैसे न का वर्गित सम्वर्गित न हुआ जैनग्रन्थोंमें इसके लिये विशेष चिह्न प्रयोग किया गया है। किसी संख्याको प्रथम वार वर्गित सम्वर्गित करनेके लिये न]^{१} लिखा जाता है जिसका आशय $न^{न}$ से है। द्वितीय वर्गित सम्वर्गितके लिये न]^{२} लिखा जाता है। इसका आशय नको वर्गित सम्वर्गित करके प्राप्त राशिको पुनः वर्गित-सम्वर्गित करना है अर्थात् $(न^{न})^{न}$ है। इस क्रियाको पुनः एक बार करनेसे नका तृतीय वर्गित-सम्वर्गित

१. वही, परि०, ६।
२. अर्थसंदृष्टि, पृ० ५६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त होता है। इसको संकेत न]^{3} के द्वारा प्रदर्शित करते हैं। दो के तृतीय वर्गित सम्वर्गितको धवलामें इस प्रकार लिखा है।[1]

$$\overline{२}|^{३} = (२५६)^{२५६}$$

वर्गमूलके लिये चिह्न

तिलोयपण्णत्ति और अर्थ संदृष्टि आदिमें वर्गमूलके लिये 'मू०' का प्रयोग किया गया है। तिलोयपण्णत्तिके निम्नलिखित अवतरणमें 'मू०' संकेत वर्गमूलके लिये दृष्टिगोचर होता है[2] :

= ५८६४ रिण रा = ४।५।६५६। ५	४।६५५३६	− २ मू० / १।३ मू०	= ४।६५५३६ | ५

पं० टोडरमलकी 'अर्थसंदृष्टि'में के $मू_{१}$ प्रथम वर्गमूल और के $मू_{२}$ वर्गमूलके वर्गमूलके लिये प्रयोग किया गया है।[3]

संकेत 'मू०'का मूल अर्थात् वर्गमूलका प्रथम अक्षर है। इस चिह्नको उस संख्याके अन्तमें लिखा जाता था, जिसका वर्गमूल निकालना होता था। 'वक्षाली हस्तलिपिमें 'मू०'का प्रयोग मिलता है जो निम्न उदाहरणसे स्पष्ट है :

११ यु०	५ मू०	४
१	१	१

इसका आशय $\sqrt{११ + ५} = ४$ है।

इसी प्रकार,

११ + ७	मू०	२
१ १		१

का आशय $\sqrt{११ - ७} = २$ है।

भास्कराचार्य द्वितीय (११५० ई०)ने अपने बीजगणितमें वर्गमूलके लिये 'क' अक्षरका प्रयोग किया है। यह संकेत 'क' शब्द करणीका प्रथम अक्षर है। इस संकेत 'क' को उस संख्याके पहले लिखा जाता था जिसका वर्गमूल निकालना होता था। निम्न उदाहरणसे इसका आशय पूर्णतः स्पष्ट है[4]।

क ९ क ४२० क ७५ क प४ .

का आशय $\sqrt{९} + \sqrt{४५०} + \sqrt{७५} + \sqrt{५४}$ है।

---

१. धवला, पुस्तक ३ अमरावती, १९४१, परिशिष्ट, पृ० ३५।
२. तिलोयपण्णत्ति भाग २, पंचम अधिकार, पृ० ६०१।
३. पं० टोडरमलकी अर्थसंदृष्टि, पृ० ५।
४. भास्कर द्वितीयका बीजगणित, पृ० १५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष संख्याके लिये चिह्न

त्रिलोकसार[1] व अर्थसंदृष्टिमें संख्यातके लिये २, प्रसंख्यातके लिये २ तथा अनन्तके लिये 'ख' का प्रयोग मिलता है।

उपर्युक्त विवेचनके आधार पर यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि जैनाचार्योंने संख्या तथा संकलनादि सूचक संकेतों पर विस्तृत एवं गहन अध्ययन प्रस्तुत करके गणितशास्त्रको समृद्धिशाली बनानेका स्तुत्य प्रयास किया है। वस्तुतः गणितशास्त्रमें संख्या तथा संकलनादि सूचक संकेतोंका अपना विशिष्ट महत्त्व है। इसके अभावमें गणितीय अर्न्तदृष्टि धुँधली-सी प्रतीत होती है। जैनाचार्योंने प्रस्तुत कथनकी महत्ताको समझते हुये संख्या और संकेतों पर विचार करना अपना परम कर्तव्य समझा और इन आचार्योंकी यह परम निष्ठा ही गणितशास्त्रको महत्ती देन सिद्ध हुई। ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँ पर जैनाचार्योंने प्रस्तुत विषयकी मौलिकता तो प्रदानकी ही है, साथ ही साथ व्यावहारिकता, रोचकता और सरलताकी त्रिगुणात्मकताको भी समाहित किया है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि जैनाचार्योंने इस क्षेत्रमें जो भगीरथ प्रयत्न किये हैं, कदापि विस्मृत नहीं किये जा सकते।

१. त्रिलोकसार, परि०, पृ० २१।
२. वक्षाली मेनुस्क्रिप्ट, रतनकुमारी स्वाध्याय संस्थान, १९७७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org